DR. NIRAJ KUMAR
Ph. D. (Political Sc.)
Patna University, Patna
Mobile No. 9470087121
Email. Id. Niraj287@gmail.com

न्यायिक पुनरावलोकन

न्यायिक पुनरावलोकन न्यायालय की वह शक्ति होती है जिसके आधार परसंविधान की व्याख्या की जाती है और विधानपालिका, कार्यपालिका या प्रशासनके उन कार्यों को रद्द किया जाता है जो सर्वोच्च कानून अर्थात् संविधान केविरुद्व पाए जाते हैं। डिमॉक और डिमॉक के शब्दों में, न्यायिक पुनरावलोकनन्यायलयों की ओर से उन मुकदमों से किया जाने वाला परीक्षण है जो वास्तव मेंवैधानिक अधिनियमों और कार्यकारिणी या प्रशासनिक कार्यों से उनके सामनेहोते हैं और यह निर्णय करने के लिए है कि उनका लिखित संविधान के द्वारानिषेध किया गया है या इसको दी शक्तियों से अधिक है कि नहीं। लिखित संविधानकी न्यायालय की ओर से व्याख्या करने के पश्चात् यदि यह पाया जाता है कि कोईकानून या कानून का कोई भाग संविधान के किसी अनुच्छेद का उल्लंघन करता हैतो उस कानून या उस कानून के किसी भाग को न्यायालय असंवैधानिक घोषित करकेरद्द कर देता है। साधारण शब्दों में हम कह सकते हैं कि न्यायिक पुनरावलोकनन्यायालय की शक्ति है जिसके द्वारा यह:

1. विधानपालिका और कार्यपालिका के कानूनों का पुनर्निरीक्षण करता है, केवल उन मुकदमों में जो इसके सामने आते हैं।
2. कानूनों की संवैधानिक वैधता का निर्धारण करता है।

3. उस कानून या इसके किसी भाग को रद्द कर देता है जो असंवैधानिक या संविधान के विरुद्व पाया जाता है।

न्यायिक पुनरावलोकन स्वचालित नहीं होता है। न्यायालय अपने-आप न्यायिकपुनर्न्यायिक नहीं कर सकता। इस शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा तब ही कियाजा सकता है जब किसी मुकदमे के दौरान या किसी विशेष मुकदमे के द्वारा किसीकानून को उसके सामने चुनौती दी जाती है। इससे आगे, यदि न्यायालय किसी कानूनया इसके किसी भाग को रद्द करता है, तो निर्णय, निर्णय देने की तिथि सेलागू हो जाता है तथा पिछली समस्त कार्यवाही जो इस कानून के आधार पर की जाचुकी हो रद्द नहीं होती। जब न्यायालय किसी कानून को गैर-संवैधानिक घोषितकरके रद्द करता है तो उसको यह स्पष्ट करना पड़ता है कि इस कानून ने किससंवैधानिक अनुच्छेद का उल्लंघन किया है। न्यायालय को कानून को रद्द करने केकारणों को भी स्पष्ट करना होता है। इस शक्ति का प्रयोग करके, वैधनिक औरकार्यकारिणी के अनावश्यक और आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप के विरुद्व लोगोंके मौलिक अधिकारों और संविधान की सुरक्षा और व्याख्या करने का कर्त्तव्यन्यायालय निभाता हैं।

न्यायिक पुनरावलोकन के बारे में अनेक विद्वानों ने अलग अलग परिभाषाएं दी हैं जो इसका अर्थ स्पष्ट करती है। साधारण रूपमें तो न्यायिक पुनरावलोकन न्यायपालिका की वह शक्ति है जिसके द्वारा वह कार्यपालिका व विधायिका के उन कानूनों तथा आदेशोंको असंवैधानिक घोषित कर सकती है जो संविधान के आदर्शों के विपरीत हों। न्यायिक पुनरावलोकन के बारे में परिभाषाएं दी गई हैं :-

1. **अमेरिका के न्यायधीश मारबरी मार्शल**ने न्यायिक पुनरावलोकन को परिभाषित करते हुए कहा है-"यह न्यायालय की ऐसीशक्ति है जिसमें यह किसी कानूनी या सरकासरी कार्य को असंवैधानिक घोषित कर सकती है जिसे यह देश की मूल विधिया संविधान के विरुद्ध समझती है।"
2. **मुनरो के अनुसार**-"न्यायिक पुनरावलोकन वह शक्ति है जिसके अन्तर्गत कांग्रेस द्वारा पारित किसी कानून अथवा राज्य केसंविधान की किसी व्यवस्था या कानून जैसे प्रभाव वाले और किसी सार्वजनिक नियम के सम्बन्ध में यह निर्णय लिया जाताहै कि वह संयुक्त राज्य के संविधान के अनुकूल है या नहीं।"
3. **मैक्रिडिस तथा ब्राउन के अनुसार**-"न्यायिक पुनरावलोकन का अर्थ न्यायधीशों की उस शक्ति में है जिसके अधीन वे एक उच्चतरकानून के नाम पर संविंधियों

तथा आदेशों की व्याख्या कर सकें औरसंविधान के विरुद्ध पाने पर उन्हें अमान्य ठहरा सकें।"

4. **डिमॉक के अनुसार**–"न्यायिक पुनर्निरीक्षण, व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानून और कार्यपालिका या प्रशासकीय अधिकारियोंद्वारा किए गए कार्यों से सम्बन्धित अपने सामने आए मुकद्दमों में, न्यायालय द्वारा जांच को कहते हैं, जिसके अन्तर्गत वे निर्धारितकरते हैं कि वे कानून या कार्य संविधान का अतिक्रमण करते हैं या नहीं।"
5. **हेनरी जे0 अब्राहम के अनुसार**–"न्यायिक समीक्षा वह शक्ति है जिससे कोई न्यायालय किसी कानून या इसके आधार पर कोईसरकारी कार्यवाही या किसी सार्वजनिक अधिकारी द्वारा किए गए गैर–कानूनी कार्य को असंविधानिक और इस प्रकार कानूनद्वारा अप्रवर्तनीय घोषित कर सकता है जिसे वह देश की मूल विधि के विरुद्ध समझता है।"
6. **पिनॉक व स्मिथ के अनुसार**–"न्यायिक पुनर्निरीक्षण न्यायालयों की वह शक्ति है जो संविधान को स्पष्ट करती है तथाव्यवस्थापिका, कार्यपालिका अथवा प्रशासन द्वारा बनाए गए कानूनों को प्रमुख कानून के विरुद्ध होने पर असंवैधानिक घोषितकरती है।"
7. **एम0 वी0 पायली के अनुसार**–"यह न्यायालय की वह क्षमता है जिससे वह व्यवस्थापन कार्यों की वैधानिकता या अवैधानिकताको घोषित करती है।"
8. **कोर्विन के अनुसार**–"न्यायिक पुनर्निरीक्षण का अर्थ न्यायालयों की उस शक्ति से है, जो उन्हें अपने न्याय के क्षेत्र के अन्तर्गतलागू होने वाले व्यवस्थापिका के कानूनों की वैधानिकता का निर्णय देने के बारे में तथा कानूनों को लागू करने के बारे में प्राप्तहै, जिन्हें वे अवैध या व्यर्थ समझें।"

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि न्यायिक पुनरावलोकन न्यायालयों की वह शक्ति है जिसके द्वारा वे कार्यपालिका तथाविधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों की संविधानिकता जाँचते हैं और यदि वे कानून संविधान के विपरीत पाए जाएं तो असंवैधानिकघोषित किए जा सकते हैं।

न्यायिक पुनरावलोकन की उत्पत्ति व विकास

सबसे पहले ब्रिटेन में कानून की व्याख्या करने वाली स्वतन्त्र न्यायपालिका के विचार की जानकारी प्राप्त होती है। यद्यपि न्यायिकपुनरावलोकन की उत्पत्ति को अमेरिका से सम्बन्धित किया जाता है, लेकिन इसके प्रामाणिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। सबसे पहलेइंग्लैण्ड की प्रिवी कौंसिल को यह अधिकार प्राप्त हुआ था। इस परिषद को सर्वोच्च न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्णयों का अवलोकनकरने व रद्द करने का

अधिकार प्राप्त था। पिनॉक व स्मिथ ने इसकी उत्पत्ति ब्रिटेन में ही मानी है। अमेरिका का संविधान न्यायिकपुनरावलोकन की व्यवस्था करने में असमर्थ है। वहां पर अप्रत्यक्ष रूप से हीइसकी व्यवस्था है। 1803 कें मारबरी बनाम मेडिसन के मुकद्दमेमें न्यायधीश मार्शल ने ही न्यायिक पुनरावलोकन को परिभाषित किया था। उसके बाद न्यायधीश मार्शल ने भी अमेरिका में न्यायिकपुनरावलोकन की शक्ति को प्रतिपादित किया। इन दोनों न्यायधीशों ने इसे कानून की वैधानिकता जांचने की महत्वपूर्ण कसौटी स्वीकार किया।

उपरोक्त वाद-विवाद के बाद निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि चाहे इसकी उत्पत्ति ब्रिटेन में ही हुई हो, लेकिन एक व्यवस्थित विचारके रूप में इसके दर्शन सर्वप्रथम अमेरिका में ही होते हैं। आज न्यायिकपुनरावलोकन का सिद्धान्त भारत व अन्य संघात्मक राज्योंमें महत्वपूर्ण स्थान बन चुका है।

अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन

अमेरिका में 1787 ई0 में संविधान का निर्माण करते समय न्यायिक पुनरावलोकन की कोई व्यवस्था नहीं की थी। लेकिन 1803 मेंमारबरी बनाम मेडिसिन के केस में न्यायधीश मार्शल ने ऐतिहासिक निर्णय सुनाते हुए कहा था-"न्यायिक पुनर्निरीक्षण न्यायालयों द्वाराअपने सामने पेश विधायी कानूनों तथा कार्यपालिका अथवा प्रशासकीय कार्यों का वह निरीक्षण है जिसके द्वारा यह निश्चित कियाजाता है कि क्या ये एक लिखित संविधान द्वारा निषिद्ध किए गए हैं अथवा उन्होंने अपनी शक्ति से बढ़कर कार्य किया है या नहीं।"

मार्शल ने विस्तार से इस केस में व्याख्या करते हुए कहा है कि वह संविधान जो सरकार के ढांचे की व्याख्या करता है, स्वयं एककानून है और देश का सर्वोच्च कानून है। न्यायधीश जिन्हें संविधान की रक्षा करने की शपथ ली होती है, संविधान और कानून मेंझगड़ा उत्पन्न होने की स्थिति में कांग्रेस के कानून को अवैध घोषित करने का अधिकार न्यायपालिका के पास है। इस टिप्पणी सेअमेरिका में काफी वाद-विवाद हुआ और आखिरकार बहुमत ने इसे स्वीकृत कर दिया। यहीं से न्यायिक पुनरावलोकन की परम्पराकी शुरुआत मानी जाती है। उसके बाद 1819 में मैंकुलाक बनाम मेरिलेंड के केस में तथा 1824 में गिब्बन बनाम औगडेन के केसमें न्यायधीश मार्शल ने न्यायिक समीक्षा की शक्ति को फिर परिभाषित किया। उसके बाद 1857 में न्यायधीश रोजन बी0 टॉनी जोस्कॉट बनाम स्टैनफोर्ड के मामले में कांग्रेस द्वारा बनाए गए एक अधिनियम को अवैध घोषित किया। इस न्यायिक सक्रियता से 1932 में राष्ट्रपति और न्यायपालिका में काफी विवाद छिड़ गया। 1933 में 'National Recovery Act' को न्यायपालिका के बारे में आक्षेप करना शुरु कर दिया। लेकिन

इसका न्यायिक पुनरावलोकन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अब सर्वोच्च न्यायालय अमेरिका में इस शक्तिका प्रयोग इतने प्रभावशाली ढंग से करता है कि जनता यह कहने को मजबूर है कि "संविधान वही है जो न्यायधीश कहते हैं।"

न्यायिकपुनरावलोकन का उल्लेख अप्रत्यक्ष रूप से अमेरिकन संविधान में भी मिलता है। संविधान के अनुच्छेद की धारा 2 में कहा गया है-"इससंविधान या अमेरिका के कानूनों के अन्तर्गत या उनके प्राधिकार के अधीन की जाने वाली सन्धियों के अधीन, न्यायिक शक्ति विधिऔर सभ्यता में सभी मामलों तक व्यापक होगी।" वास्तव में न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था अमेरिकन संविधान में न होकरसंविधान की प्रकृति में ही निहित है। एल्सवर्थ ने इसकी पुष्टि करते हुए कहा है कि "यदि संयुक्त राज्य अमेरिका में राज्य का शासनअपनी शक्तियों की सीमाओं का अतिक्रमण करे तो वह अनियमित है तथा संघीय न्यायधीश जो निष्पक्षता बनाए रखने के लिए स्वतन्त्रहोने चाहिए; उसे अनियमित घोषित करेंगे। अमेरिका में न्यायालयों को यह शक्ति वहां की संघात्मक प्रणाली के कारण प्राप्त हुईहै। न्यायिक पुनरावलोकन ही अमेरिका के संविधान को व्यावहारिक बनाता है, इसी कारण वहां पर न्यायिक पुनरावलोकन कीव्यवस्था का निरन्तर विकास हुआ है। य़द्यपि कार्यपालिका न्यायपालिका के आदेश को मानने के लिए बाध्य नहीं है, लेकिन फिरभी कर्तव्य के रूप में प्राय: न्यायिक पुनरावलोकन का वहां सम्मान हुआ है। अमेरिका में संविधान की धारा 4 भी अप्रत्यक्ष रूप सेन्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था करती है। इसमें कहा गया है कि संविधान ही देश का सर्वोच्च व आधारभूत कानून माना गयाहै। इससे न्यायालयों को असंविधानिक कानूनों को अवैध ठहराने की शक्ति प्राप्त हुई है। बीयर्ड ने इसी धारा की पुष्टि करते हुएफिलाडेल्फिया सम्मेलन में न्यायपालिका की न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति का समर्थन किया था। उन्होंने राज्य व संघीय दोनोंन्यायालयों द्वारा शासन के द्वारा शक्तियों के अतिक्रमण की स्थिति में इस शक्ति का प्रयोग करने की वकालत की है। इस प्रकारअमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन का पालन करना एक परम्परा सी पड़ गई है। आज अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन काकोई संविधानिक आधार न होते हुए, वहां इसका निरन्तर विकास हो रहा है।

न्यायिक पुनरावलोकन का प्रभाव

अमेरिका में न्यायिक समीक्षा की शक्ति का वहां के राजनीतिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। आज इसका वहां की राजनीतिकव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है। आज वहां पर न्यायिक पुनर्निरीक्षण के द्वारा ही संविधान की व्याख्या की जाती है, कांग्रेस तथाराज्यों की व्यवस्थापिकाओं के कानूनों तथा प्रशासकीय कानूनों की वैधानिकता-अवैधानिकता की जांच की जाती है। इस शक्तिके कारण न्यायालय

व्यवस्थापन की शक्ति बन चुका है। इस शक्ति ने संविधान को देश का सर्वोच्च कानून बना दिया है। न्यायिकपुनरावलोकन ने वहां के पुलिस अधिकारों को सर्वाधिक प्रभावित किया है। आज पुलिस अधिकारों में सार्वजनिक सुरक्षा, जन-कल्याण, स्वास्थ्य, नैतिकता आदि विषयों का भी समावेश हो चुका है। अपनी इस शक्ति के कारण आज सर्वोच्च न्यायालयराजनीतिक व्यवस्था का एक आधार-स्तम्भ तथा कांग्रेस का तीसरा सदन माना जाता है। आज बदलते परिवेश में भी न्यायपालिकाअपनी इस शक्ति के कारण अपनी स्वतन्त्रता व निष्पक्षता को कायम रखने की दिशा में कार्यरत है। लेकिन कई बार न्यायपालिकाने इस शक्ति का गलत प्रयोग जनता की सहानुभूति भी खोई है। 1933 से 1936 तक आर्थिक संकट के समय सरकार द्वारा बनाएगए नए कानूनों में से अधिकांश को असंविधानिक घोषित करके न्यायपालिका ने अपनी इस शक्ति का दुरुपयोग किया है। लेकिन1937 के बाद सर्वोच्च न्यायाल ने अपनी कतयों में सुधार करके इस शक्ति का व्यापक सोच-विचार करके ही क्रियान्वयन करनेकी नीति को अमल में लाया है। आज सर्वोच्च न्यायालय अपनी इस शक्ति का प्रयोग मर्यादित तरीके से करने की नीति अपनारहा है। इसी कारण आज न्यायिक पुनरावलोकन का महत्व बरकरार है।

अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन सीमाएं

अमेरिका में न्यायिकपुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग न्यायालय असीमित तरीके से नहीं कर सकते। वहां पर इस शक्ति को मर्यादित रखने का प्रयासकिया गया है। इसको मर्यादित करने वाली सीमाएं हैं :-

1. सर्वोच्च न्यायलय उन्हें कानूनों को अवैध घोषित कर सकता है जो उनके सामने केस के रूप में आते हैं।
2. केवल उसी कानून को अवैध घोषित किया जा सकता है जिसकी असंविधानिक बिना भ्रम के स्पष्ट हो।
3. केवल कानून की उन्हीं धाराओं को अवैध घोषित किया जा सकता है जो संविधान के विपरीत हो, न कि समस्त कानून को।
4. राजनीतिक प्रश्नों पर इस शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

न्यायिक पुनरावलोकन की आलोचना

अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति की आलोचना के निम्न आधार हैं :-

1. सर्वोच्च न्यायालय ने कई बार वैध व उचित कानूनों को भी अवैध ठहराया है। 1933 में आर्थिक संकट के समय पास किएगए औचित्यपूर्ण कानूनों को अवैध ठहराना सर्वथा गलत था।
2. न्यायिक पुनरावलोकन न्यायिक निरंकुशता को जन्म देता है।

3. न्यायिक पुनरावलोकन प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों के विपरीत है। प्रजातन्त्र में कानूनों की वैधता भी जन-प्रतिनिधियाों द्वारा हीजांची जानी चाहिए, क्योंकि उनका कानून निर्माण से गहरा सम्बन्ध होता है।
4. इस शक्ति का अमरीका के संविधान में उल्लेख नहीं है। इसलिए न्यायालयों द्वारा इसका प्रयोग अपने आप में असंविधानिक है।
5. इससे विधानमण्डल द्वारा कानून निर्माण में प्राय: लापरवाही बरती जाती है। उसे पता होता है कि यदि कानून गलत बनभी गया तो न्यायालय उसे सुधार देगा।
6. इससे न केवल कानून ही रद्द होता है, बल्कि नीति को भी नुकसान पहुंचता है। नीति-निर्माण करना सरकार का कार्य हैन कि न्यायालयों का।
7. यह बहुमत की निरंकुशता पर आधारित है। इसमें किसी कानून को अवैध घोषित करने के लिए न्यायधीशों का बहुमत होनाजरूरी है। उदाहरण के लिए यदि किसी कानून की वैधता जाँचने के लिए 10 न्यायधीशों का पैनल बैठता है तो उनमें से 6 के बहुमत से कानून वैध या अवैध माना जाता है। शेष 4 की राय का कोई महत्व नहीं है। इसमें एक मत से कानून को अवैधघोषित किया जाना लोकतन्त्रीय आस्थाओं पर करारा प्रहार है। अत: यह अल्पमत के हितों का विरोधी है।
8. इससे राजनीतिक वाद-विवादों को बढ़ावा मिलता है।
9. इससे कार्यपालिका, विधायिका व न्यायपालिका में गतिरोध उत्पन्न होता है। अच्छे शासन के लिए इन तीनों में तालमेल होनाबहुत ही आवश्यक है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आज सर्वोच्च न्यायालय अमेरिका में नीति-निर्माता बन गया है। वह कानूनों की व्याख्या की बजायउनकी औचित्यता की जांच करने लगा है। इसने कई महत्वपूर्ण निर्णयों को प्रभावित करके राजनीतिक विवादों को जन्म दिया है।तीसरे सदन के रूप में उभरकर इसने न्यायिक निरंकुशता को जन्म दिया है। इसलिए हुक का कथन सही है कि "संविधान वहहै जो न्यायधीश कहते हैं।" लेकिन अनेक विवादों से घिरे रहने के बाद भी आज अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का विकास जारी है। यह संविधान के चौथे स्तम्भ तथा कांग्रेस के तीसरे सदर के रूप में अपना स्थान बना चुका है। अमेरिका के संविधानको व्यावहारिक बनाने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। फाइनर ने इसे अमेरिकन संविधान की सर्वाधिक मौलिक देन कहा है। अत:अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन का भविष्य उज्ज्वल है।

भारत में न्यायिक पुनरावलोकन

भारतीय संविधान में ब्रिटिश संविधान की तरह न तो संसद को सर्वोच्च बनाया गया है और न ही अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालयकी तरह न्यायिक निरंकुशता की परम्परा को विकसित किया है। भारतीय संविधान में न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था संविधानिककानूनों की व्याख्या तक ही सीमित रखी गई है। इसका कानून की औचित्यता से कोई सरोकार नहीं है। कानून की उचित प्रक्रियाके स्थान पर वह कानून द्वारा स्थापित पद्धति को स्वीकार सर्वोच्च न्यायालय को संविधान कि अनुरूप ही कार्य करने को बाध्य कियागया है। यदि सर्वोच्च न्यायालय को अमेरिका की तरह कानून की उचित प्रक्रिया पर आधारित किया गया होतातो वह तानाशाहीका प्रतिबिम्ब बनकर सरकार के संचालन में गतिरोध उत्पन्न कर सकता था। भारत में न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था को सीमितव लिखित रूप में सर्वोच्च बनाया गया है। यद्यपि न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था सम्बन्धी कोई भी विशेष उपबन्ध नहीं है, लेकिनन्यायपालिका की सर्वोच्चता में यह सिद्धान्त स्वयं निहित है। संविधान का अनुच्छेद 368 संविधान को सर्वोच्च बना देता है। इससर्वोच्चता के कारण सर्वोच्च न्यायालय केविरुद्ध कानून बनाते हैं, तो उसे असंवैधानिक घोषित करना सर्वोच्च न्यायालय का प्रमुखअधिकार है। यद्यपि गोलकनाथ मामले में सरकार व सर्वोच्च न्यायालय में सरकार व न्यायालय के बीच गतिरोध उत्पन्न हो गया था जिसे संविधान में संशोधन करके जल्दी ही दूर कर लिया गया। आज भारत का सर्वोच्च न्यायालय मर्यादित तरीके से अपनी इसशक्ति का प्रयोग कर रहा है।

भारत में न्यायिक पुनरावलोकन की संविधानिक व्यवस्था

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 12(2) में इस बात का उल्लेख किया गया है कि राज्य ऐसा कोई कानून नहीं बना सकता जो मौलिकअधिकारों के विरुद्ध जाता हो। इस आधार पर सर्वोच्च न्यायालय को यह शक्ति प्राप्त हो जाती है कि राज्य के कार्यों को अनुच्छेद13 (2) के आधार पर जांच सकता है। 1971 तक वह व्यवस्था प्रभावी रही। लेकिन 1971 में 24 वां संविधान संशोधन करके अनुच्छेद13 के खण्ड (3) के बाद खण्ड (4) जोड़ दी। इसमें कहा गया कि इस अनुच्छेद की बात अनुच्छेद 368 पर लागू नहीं होगी। इससे यह विवाद समाप्त हो गया कि संसद मौलिक अधिकारों में परिवर्तन कर सकती है या नहीं। 1973 में सर्वोच्च न्यायालय ने अपनेनिर्णय में संविधानिक संशोधन की वैधता को स्वीकार कर लिया और संसद व सर्वोच्च न्यायालय का गतिरोध समाप्त हो गया जोगतिरोध इस बात पर था कि संसद को मौलिक अधिकारों में परिवर्तन करने का अधिकार है या नहीं। सर्वोच्च न्यायालय ने 1967में गोलकनाथ के केस में अपने 1952 व 1965 के मामलों में दिए गए संसद के अधिकार की वैधता को उलट दिया।

अब उसने निर्णय दिया कि संसद संशोधन तो कर सकती है, लेकिन मौलिक ढांचे में नहीं। इस प्रकार 1973 तक यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो गई संसद को मौलिकढांचे में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है। इसी तरह अनुच्छेद 32 भी संविधानिक उपचारों के अधिकार के रूप में सर्वोच्च न्यायालय कोयह शक्ति देता है कि उसे यह देखने का अधिकार है कि क्या कहीं पर मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण तो नहीं हुआ है।

संविधान के अनुच्छेद 131 एवं 132 भी सर्वोच्च न्यायालय को संघीय व राज्य सरकारों द्वारा निर्मित कानूनों के पुनरावलोकन काअधिकार देते हैं। इनकी तरह सर्वोच्च न्यायालय का्र प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार तथा अपीलीय क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत कानून की व्याख्याकरने का अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद 246 भी न्यायिक पुनरावलोकन को दर्शाता है। इसके अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को यहअधिकार प्राप्त है कि यदि संघ और राज्य अपने-अपने क्षेत्रों में कानून बनाते समय संविधान की मर्यादा का अतिक्रमण करें तो उच्चतम न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग करे, उसे असंवैधानिक घोषित करने का अधिकार है। 42 वें संविधानिकसंशोधन द्वारा सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक समीक्षा की शक्ति की स्पष्ट व्याख्या की गई है। इसके द्वारा भारतीय संविधान में13.। नया अनुच्छेद जोड़कर यह बात स्पष्ट की गई है कि केन्द्रीय कानून की वैधता को केवल सर्वोच्च न्यायालय में ही चुनौतीदी जा सकती है, अन्यत्र नहीं। इससे पहले केन्द्रीय कानून की समीक्षा उच्च न्यायालय भी कर सकते थे। लेकिन अब यह अधिकारकेवल सर्वोच्च न्यायालय के पास रह गया। अनुच्छेद 137 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को अपने निर्णयों और आदेशों कापुनरावलोकन करने की भी शक्ति प्राप्त है। 43वें संविधान संशोधन द्वारा न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति वापिस उच्च न्यायालयों को भी दे दी गई। इसमें यह बात स्पष्ट कर दी गई उच्च न्यायालय को केन्द्रीय व राज्य के कानूनों की जांच करेंगे, लेकिन सर्वोच्चन्यायालय को केन्द्रीय व राज्यों दोनों के कानूनों की संवैधानिकता जाँचने का अधिकार होगा।

भारत में न्यायिक पुनरावलोकन की व्यावहारिकता

भारत में सबसे पहले 1950 के निवारक नजरबन्दी कानून के खण्ड 14 को सर्वोच्न न्यायालय ने अवैध करार दिया। उसके बाद 1947व 1954 के आयकर अधिनियम की धारा को सर्वोच्च न्यायालय ने अवैध माना। उसके बाद 1951 की मद्रास सरकार की साम्प्रदायिकराज आज्ञा को समानता के सिद्धान्त के विरुद्ध करार दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 19 तथा 31 के विरोधी कईकानूनों

को असंवैधानिक माना। बृजभूषण बनाम दिल्ली सरकार के केस में सर्वोच्च न्यायालय ने प्रैस की स्वतन्त्रता का समर्थनकिया। 1967 में गोलकनाथ केस में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि संसद को मौलिक अधिकारों में परिवर्तन करने का कोई अधिकारनहीं है। उसके बाद 1969 में बैंकों के राष्ट्रीयकरण अधिनियम को संविधान के अनुच्छेद 19 तथा 31 का विरोधी करार दिया। 1970में उसने प्रिवी पर्स तथा अन्य विशेषाधिकारों को समाप्त करने वाले राष्ट्रपति के अध्यादेश को अवैध बताया। 1973 में केशवानन्दभारती के केस में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि संसद मौलिक अधिकारों में कटौती या परिवर्तन कर सकती है, लेकिनसंविधान के मूल रूप से छेड़छाड़ नहीं कर सकती। उसके बाद सर्वोच्च न्यायालय ने 42 वें संशोधन के अधीन संविधान के संशोधितरूप के 31.ब् को भी रद्द कर दिया। 1983 में सर्वोच्च न्यायालय ने फौजदारी कानून की धारा 303 को अवैध घोषित किया। 1991में सर्वोच्च न्यायालय ने दल-बदल अधिनियम ;52वां संधोधन) को वैध करार दिया तथा राष्ट्रीय मोर्चे की सरकार को मंडल कमीशनकी सिफारिशों को उचित बताया।

इसी तरह सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का अनेक अन्य अवसरों पर भी व्यावहारिक प्रयोग कियाहै तथा स्वतन्त्रता की रक्षा तथा सामाजिक न्याय की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उसने संविधान के अनुच्छेदों 14ए 19तथा 31 का उल्लंघन करने वाले सभी कानूनों को अवैध करार देकर स्त्रियों व बच्चों के अधिकारों की रक्षा की है। अछूतों कोसमाज में महत्वपूर्ण स्थान दिलाया है तथा संविधान के अनुच्छेदों 20 व 30 की उदारवादी व्याख्या करके अल्पसंख्यकों के हितोंका पोषण किया है। लेकिन हाल ही में दिए गए निर्णय में हड़ताल के अधिकार को अवैध घोषित करके जनतांत्रिक आस्थाओंपर करारी चोट भी की है।

भारत में न्यायिक पुनरावलोकन की आलोचनात्मक मूल्यांकन

यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का अच्छे कार्यों के लिए बहुत अधिक प्रयोग किया है, लेकिनकई बार उसने अपनी इस शक्ति का दुरुपयोग करके न्यायिक तानाशाही का भी परिचय दिया है। 1967 के गोलकनाथ मुकदमें में वह आलोचना का पात्र बन गया था और लोगों ने तो यहां तक कहना शुरु कर दिया था कि सर्वोच्च न्यायालय कानून काव्याख्याकार न होकर नीति-निर्माता बनता जा रहा है और विधायिका के कार्य भी स्वयं करने लगा है।। वर्ष 2003 में हड़ताल केअधिकार को गैर-कानूनी करार देना सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी तानाशाही का ही परिचय दिया है। आज सर्वोच्च न्यायालय कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के सिद्धान्त से हटकर कानून की उचित प्रक्रिया के सिद्धान्त

की ओर बढ़ रहा है। अब अधिकतर निर्णयन्यायधीशों के सामाजिक-नैतिक दृष्टिकोण पर आधारित होते जा रहे हैं। अपने ही निर्णयों को बार-बार पुनरावलोकन करकेसर्वोच्च न्यायालय ने अनिश्चय की स्थिति पैदा कर दी है। हड़ताल के अधिकार को पहले तो उसने सीमित किया था, लेकिन अबसमाप्त करके न्यायिक प्रक्रिया के प्रति सन्देह त्पन्न कर दिया है। बहुमत पर आधारित निर्णयों के कारण आज अल्मपत की उपेक्षाहो रही है। कई बार अधिक महत्वपूर्ण मामलों में भी बहुमत के अभाव के कारण उचित निर्णय नहीं हो पाते। इसी कारण आज न्यायिक पुनरावलोकन को अप्रजातांत्रिक कहा जाने लगा है। इसलिए आज आवश्यकता इस बात की है कि सर्वोच्च न्यायालयउचित मामलों में ही अपनी इस शक्ति का प्रयोग करे। यद्यपि कई मामलों में सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका सराहनीय रही है। आजउसी भूमिका को बरकरार रखने की महती आवश्यकता है। इसलिए सर्वोच्च न्यायालय कोअपनी छवि को संवैधानिक बनाए रखने के लिए ऐसे कदम उठाने चाहिंए जो कार्यपालिका व विधायिका के साथ उसके टकरावको रोककर राजनीतिक विकास के मार्ग पर देश को ले जाने वाला हो।

ब्रिटेन, स्विट्जरलैंड, सोवियत संघ तथा फ्रांस में न्यायिक पुनरावलोकन

ब्रिटेन में संसदीय सर्वोच्चता का सिद्धान्त प्रचलित होने के कारण वहां पर न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति न्यायपालिका को प्राप्तनहीं है। वहां पर न्यायालय प्रशासकीय कानूनों को तो असंवैधानिक घोषित किया जा सकता है, संसदीय कानूनों को नहीं। इसलिएब्रिटेन में न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का न तो कोई विधानिक प्रावधान है और न ही वह अस्तित्व में है। इसी तरह स्विससंघीय न्यायालय को भी यह अधिकार प्राप्त नहीं है। वहां पर यह अधिकार केवल जनता को है। वहां पर संघीय सभा के कानूनोंका पुनरावलोकन करने की शक्ति पर पूर्ण प्रतिबन्ध है, लेकिन न्यायालयों का अधिकार कैण्टनों पर तो है। इस तरह स्विट्जरलैण्डमें सीमित न्यायिक पुनरावलोकन का प्रावधान है। सोवियत संघ में इस शक्ति का कोई प्रावधान नहीं था। अब क भी सोवियत संघके नए राज्यों में न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति स्वरूप अस्पष्ट है। फ्रांस में भी न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार न्यायपालिकाके पास नहीं है। वहां पर यह अधिकार 'संविधानिक परिषद' को सौंपा गया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि न्यायिक पुनरावलोकन का विकसित रूप केवल अमेरिका और भारत की न्यायपालिका में ही देखने कोमिलता है। इन देशों में न्यायिक पुनरावलोकन द्वारा संविधानिक व्यवस्था को गतिशील व व्यवहारिक बनाने का प्रयास किया गया है।

न्यायिक पुनरावलोकन का महत्व

न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति न्यायपालिका को ऐसा स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान करती है कि वह कार्यपालिकाऔर विधायिका केहस्तक्षेप से मुक्त रहकर नागरिक अधिकारों की रक्षा में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। संघात्मक शाासन प्रणालियों में जहांशक्तियों का बंटवारा केन्द्र व राज्यों में होता है, वहां पर तो संविधानिक गतिरोध टालने में न्यायपालिका की भूमिका अधिक महत्वपूर्णहोती है। मुनरो का कहना है कि-"यदि अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन प्रचलित न होता तो यहां न जाने कब की अराजकताफैल गई होती।" इसी प्रकार होम्स ने कहा है-"मेरा निश्चित मत यह है कि यदि सुप्रीम कोर्ट राज्यों द्वारा बनाए गए कानूनों कोअसंवैधानिक घोषित करने के अधिकार से वंचित हो जाएगा तो हमारा संघ अवश्य खतरे में पड़ जाएगा।" न्यायपालिका अपनी इसीशक्ति के कारण अमेरिका तथा भारत में विधायिका व कार्यपालिका द्वारा पास किए गए कई असंवैधानिक कानूनों को रद्द कर सकीहै। अपनी इसी शक्ति के कारण आज न्यायपालिका संविधान का तीसरा सदन बन चुका है। कार्यपालिका तथा विधायिका द्वारासंविधान के अतिक्रमण को रोकने, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा करने, संविधान को गत्यात्मक बनाने, संविधान की सर्वोच्चता स्थापित करने तथा राजनीतिक व सामाजिक विकास का मार्ग प्रशस्त करने में न्यायिक पुनरावलोकन का बहुत महत्व है।

न्यायिक पुनरावलोकन पर सीमाएं

न्यायपालिका अपनी न्यायिक पुनर्निरीक्षण की शक्ति का प्रयोग निर्बाध रूप से नहीं कर सकती। इस शक्ति के प्रयोग पर भी कुछ संविधानिकप्रतिबन्ध हैं जो न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति को मर्यादित करके निरंकुश बनने से रोकते हैं। से सीमाएं हैं :-

1. न्यायपालिका उन्हीं कानूनों को असंविधानिक घोषित कर सकती है जो उनके सामने मुकद्दमों के रूप में आते हैं, अन्य को नहीं।
2. किसी भी कानून को तभी अवैध या असंवैधानिक घोषित किया जा सकता है, जब कानून की असंवैधानिकता पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाये।
3. इस शक्ति का प्रयोग कानून की उचित प्रक्रिया के तहत ही किया जा सकता है। किसी कानून को अवैध घोषित करते समयन्यायधीशों को व्यक्तिगत राय से बचना पड़ता है। अमेरिका में कानून का ही प्रयोग किया जाता है। यह भी न्यायिक निरंकुशताको रोकने में सहायक होता है।
4. कानून की उन्हीं धाराओं को अवैध घोषित किया जा सकता है जो संविधान के विपरीत हों। इसमें सारे कानून को अवैध नहींमाना जा सकता। समस्त कानून

को अवैध घोषित करने के लिए इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि कानून दूसरी धाराके बिना परिभाषित न किया जा सकता हो।

5. राजनीतिक विवादों में न्यायिक पुनरावलोकन का प्रयोग वर्जित है।

अमेरिकी न्यायिक पुनरावलोकन व भारतीय न्यायिक पुनरावलोकन में अन्तर

उपरोक्त विवेचन के बाद यह कहा जा सकता है कि भारत तथा अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन की व्यवस्था में जमीन-आसमानका अन्तर है। जहां भारत में 'कानून द्वारा स्थापित पद्धति' के अन्तर्गत इस शक्ति का प्रयोग किया जाता है, वहीं अमेरिका में इसशक्ति का प्रयोग 'कानून की उचित प्रक्रिया' के तहत होता है। इसी कारण अमेरिका में न्यायिक निरंकुशता का जन्म हुआ है। वहांपर न्यायिक शक्ति पर तरह तरह के आपेक्ष उठाए जाते हैं। कई बार सर्वोच्च न्यायालय ने इस शक्ति का प्रयोग करके उचित कानूनोंको भी अवैध ठहराया है। इससे वहां कार्यपालिका, विधायिका व न्यायपालिका में भारी गतिरोध पैदा हो चुका है। 1933 में राष्ट्रपति

रुजवेल्ट ने न्यायपालिका द्वारा 'National Recovery Act' को समाप्त करने की बात पर, न्यायपालिका को ही समाप्त करने की बातकी थी। ऐसा अमेरिका के संविधान में कई बार हुआ है। व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों से ग्रसित होने के कारण अमेरिका में न्यायिकपुनरावलोकन की शक्ति के दुरुपयोग का प्रचलन बढ़ा है। लेकिन भारत में अधिकतर मामलों में न्यायपालिका ने कानून द्वारा स्थापितपद्धति का ही प्रयोग किया है। भारत में सर्वोच्च न्यायालय ने कभी भी मर्यादाओं से बाहर जाकर इस शक्ति का प्रयोग नहीं कियाहै। इसी कारण अमेरिका की बजाय भारत में न्यायिक पुनरावलोकन का स्वरूप सीमित प्रकृति का है। इसी कारण भारत में आज तक भी न्यायिक तानाशाही स्थापित नहीं हो सकी है। अत: अमेरिका का न्यायिक पुनरावलोकन भारत की तुलना में मर्यादाहीनव असीमित प्रकृति का है।

न्यायिक पुनरावलोकन का मूल्यांकन

उपरोक्त विवेचन के बाद निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि न्यायिक पुनरावलोकन न्यायपालिका के हाथ में ऐसा शस्त्र है जिसकाप्रयोग करके वह कार्यपालिका तथा विधायिका द्वारा बनाए गए असंवैधानिक कानूनों को अवैध घोषित करके नागरिक स्वतंत्रता वअधिकारों की रक्षा करती है। भारत व अमेरिका में इस शक्ति ने न्यायिक सक्रियतावाद को जन्म दिया है। इसी सक्रियतावाद केकारण आज भारत व अमेरिका में न्यायपालिका अपना स्वतन्त्र व निष्पक्ष अस्तित्व बनाए हुए है। आज की परिवर्तनशील परिस्थितियों में सामाजिक न्याय व राजनीतिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में न्यायपालिका

का जागरुक होना कार्यपालिका और विधायिकाको जन-हित में क्रियाशील बनाता है। किसी सरकार की उत्तमता की कसौटी उत्तम न्याय पद्धति ही होती है। भारत व अमेरिकामें कई मामलों में कार्यपालिका व विधायिका द्वारा दिए गए गलत निर्णयों को क्रियान्वित होने से रोककर न्यायपालिका व विधायिकाको क्रियाशील बनाकर देश हित में ही कार्य किया है। लेकिन इसके बावजूद भी कई बार न्यायपालिका द्वारा इस शक्ति का दुरुपयोग करने के कारण उसे आलोचना का शिकार होना पड़ा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि न्यायिक पुनरावलोकन का प्रयोगअति महत्वपूर्ण कानूनों के मामलों में ही किया जाए। यदि कार्यपालिका तथा विधायिका द्वारा निर्मित कोई कानून असंवैधानिक हैऔर उससे जन-कल्याण की उपेक्षा होती है तो उसको न्यायपालिका द्वारा अवैध ठहराना पूर्णतया: न्यायसंगत है। अत:न्यायपालिका को जहां तक सम्भव हो अन्य दोनों अंगों के साथ समन्वयकारी नीति के आधार पर ही क्रियाशील होना चाहिए। इसीमें उसकी भी भलाई है और देश का विकास भी सम्भव है।

भारत में न्यायिक पुनरावलोकन

भारत में न्यायिक पुनरावलोकन की उत्पत्ति को समझाते हुए, जस्टिस पी. बी.मुखर्जी ने स्पष्ट किया, भारत में यह संविधान ही है जो सर्वोच्च है औरसंसद के साथ-साथ राज्य विधान सभाओं को न केवल संविधान की सातवीं सूची मेंदर्ज तीन सूचियों में वर्णित उन संबंधित क्षेत्रों की सीमाओं के अंदर हीकार्य करना होता है, बल्कि इसके साथ-साथ संविधान के भाग III के अधीन दिए गएमौलिक अधिकारों को दी गई संवैधानिक सुरक्षा को विश्वसनीय बनाना होता है।न्यायालय किसी भी ऐसे कानून को रद्द कर देती हैं जोकि संविधान का उल्लंघनकरने का दोषी पाया जाता है।

भारत में न्यायिक पुनरावलोकन का संवैधानिक आधार

संविधान का कोई भी एक अनुच्छेद न्यायालय की न्यायिक पुनरावलोकन कीव्याख्या नहीं करता। इसकी संवैधनिक स्थिति और विधि अनुवूफलता उन व्यवस्थाओंसे उत्पन्न होती है जो यह घोषित करती है कि संविधान देश का सर्वोच्च कानूनहै और संविधान की सुरक्षा और व्याख्या करने की शक्ति सर्वोच्च न्यायालय केपास है। संविधान के कई अनुच्छेद न्यायिक पुनरावलोकन संवैधानिक आधार प्रदानकरते हैं:

1. **अनुच्छेद 13 (Article 13)**-यह अनुच्छेद न्यायालय कीन्यायिक पुनरावलोकन शक्ति को आधर प्रदान करता है। इसमें लिखा गया है :फ्राज्य ऐसा कोई कानून नहीं बनाएगा जो भाग III के द्वारा दिए अधिकारों कोवापस लेता या कम करता हो और इस अनुच्छेद के उल्लंघन में बनाया कानून

विरोधके कारण रद्द हो जाएगा। दूसरे शब्दों में यह निर्धारित करता है कि कानून, जौ मौलिक अधिकारों के विरुद्व हैं, रद्द किए जाते हैं। सर्वोच्च न्यायालयके पास उनकी संवैधानिकता का निर्णय करने की शक्ति है।

2. **अनुच्छेद 32 (Article 32)**–यह अनुच्छेद संविधान के भाग III में दिए मौलिक अधिकारों को लागू करवाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय तकपहुंच करने का अधिकार देता है। सर्वोच्च न्यायालय मौलिक अधिकारों कीसुरक्षा के लिए न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग करता है।
3. **अनुच्छेद 131 और 132 (Article 131 & 132)**–यह दोअनुच्छेद सर्वोच्च न्यायालय के प्रारंभिक और अपीलीय अधिकार-क्षेत्रों काक्रमवार वर्णन करते हैं। इसमें केन्द्र-राज्य झगड़ों से निपटने, राज्यों केमध्य झगड़ों को निपटने की शक्ति और संविधान की व्याख्या करने की सर्वोच्चन्यायालय की शक्ति शामिल है। इन शक्तियों का प्रयोग करते समय, सर्वोच्चन्यायालय न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग करता है।
4. **अनुच्छेद 226 (Article 226)**–अनुच्छेद 226 राज्य उच्चन्यायालयों को न्यायिक पुनरावलोकन शक्ति का प्रयोग का आधार प्रदान करता हैजो संविधान के भाग iii की ओर से दिए लोगों के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा केलिए प्रयोग की जाती है।
5. **अनुच्छेद 246 (Article 246)**–अनुच्छेद 246 के अधीन संघऔर राज्यों में वैधानिक शक्तियों का विभाजन किया गया है। क्योंकि सर्वोच्चन्यायालय को संघ-राज्य झगड़ों के सभी मुकद्दमों का निर्ण करने की शक्ति दीगई है जो उनके बीच शक्तियों के विभाजन के संबंध में पैदा होतो हैं, यहअनुच्छेद भी न्यायिक पुनरावलोकन को आधार प्रदान करता है।
6. **अनुच्छेद 124 (6) और 219 (Article 124 (6) & 219)**–इनअनुच्छेदों के अधीन, सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशोंको क्रमवार कानून के द्वारा स्थापित संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ उठानीपड़ती है।

इन सभी विशेष लोगों ने न्यायालय की न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति को आधारप्रदान किया जाता है। डॉ एस सी डैश के शब्दों में, न्यायपालिका का यहपवित्र कर्तव्य है कि वह संविधान को विधानपालिका और कार्यपालिका केआक्रमणों के विरुद्व सर्वोच्च रखे...। यह सभी अनुच्छेद भारत में न्यायालयोंके न्यायिक पुनरावलोकन की कानूनी और संवैधानिक आधार प्रदान करते हैं। इनकेअतिरिक्त

संविधान की कई अन्य विशेषताएँ भी न्यायालयों के न्यायिकपुनरावलोकन की शक्ति को आधार प्रदान करती हैं।

1. **सीमित सरकार का सिद्वान्त**–संविधान स्पष्ट रूप मेंसरकार की शक्तियों को परिभाषित करता है। सरकार केवल परिभाषित शक्तियों काही प्रयोग कर सकती है और असीमित शक्तियां नहीं। सरकार का कोई अंग अपनेनिर्धारित अधिकार-क्षेत्र से बाहर नहीं जा सकता। यह देखना न्यायालयों काउत्तरदायित्व होता है कि सरकार और इसका प्रत्येक अंग संविधान के द्वारापरिभाषित अधिकार क्षेत्र के अंदर ही कार्य करें और यदि इस सिद्वान्त काउल्लंघन हो तो न्यायालय उल्लंघन करने वाले कार्य को रद्द कर सकते हैं।
2. **संघवाद**–संघीयप्रणाली में, न्यायपालिका के पास अतिरिक्त उत्तरदायित्व अर्थात् संविधानकी सर्वोच्चता की सुरक्षा करना होता है और संघ व राज्य सरकारों द्वाराअपने-अपने अधिकार क्षेत्रों से बाहर जाने पर प्रतिबन्ध भी होता है। इसकेलिए भी न्यायिक पुनरावलोकन शक्ति का न्यायालय के द्वारा प्रयोग अनिवार्य होजाता है।
3. **लिखित अधिकार**–जबकभी संविधान लोगों के लिए लिखित तथा कानून द्वारा लागू करने योग्यअधिकारों की व्यवस्था करता है तो न्यायिक पुनरावलोकन की नींव रखता है।न्यायालयों को इन अधिकारों को लागू करने और इनकी सुरक्षा करने की शक्ति मिलजाती है। भारत में संविधान में लिखित अधिकारों का बिल संवैधानिक उपचारोंके अधिकार सहित शामिल है जो संविधान की मौलिक संरचना का एक भाग है। इसकेलिए यह न्यायिक पुनरावलोकन प्रदान करता है।
4. **न्यायपालिका की ओर से न्यायिक पुनरावलोकन शक्ति का प्रयोग**–1950 में संविधान के लागू होने के पश्चात् से आज तक भारत में न्यायपालिकानिरन्तर न्यायिक पुनरावलोकन शक्ति का प्रयोग करती आ रही है। इसने इस शक्तिको विधानपालिका और कार्यपालिक के कई कानूनों/आदेशों को रद्द करने केलिएप्रयोग किया जिनको इसने असंवैधानिक पाया। सर्वोच्च न्यायालय के ऐतिहासिकनिर्णय जो इन मुकदमों में दिए गए-गोपालन मुकद्दमा, गोलकनाथ मुकदमा, केशवानंदा भारती मुकदमा, मिनर्वा मिलष मुकदमा और कई अन्यों में भारत मेंन्यायिक पुनरावलोकन के कापफी प्रमाण मिलते हैं और इसकी मान्यता सरकार औरलोगों की ओर से मिलती है।
5. **42वें और 43वें संशोधन**–42वेंऔर 43वें संशोधन ने न्यायिक पुनर्निरीक्षण प्रणाली की संवैधानिक उचित कोशक्तिशाली किया है। 42वें संशोधन अधिनियम के द्वारा सर्वोच्च न्यायालय औरराज्य उच्च न्यायालयों की न्यायिक

पुनरावलोकन शक्तियों पर कोई प्रतिबन्धलगाए गए और 43वें संशोध्न अधिनियम के द्वारा यह प्रतिबन्ध हटा दिया गए। इसप्रक्रिया में, न्यायिक पुनरावलोकन की प्रणाली को भारतीय संवैधनिक प्रणालीके मूल्यवान और अभिन्न भाग के रूप में मान्यतामिली है। इस प्रकार सर्वोच्चन्यायालय और उच्च न्यायालयों के पास विधानपालिका और कार्यपालिका केकानूनों/आदेशों/नियमों की संवैधानिक उचितता का निरीक्षण करने की शक्ति हैऔर इस शक्ति को न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति कहा जाता है।

भारत में न्यायिक पुनरावलोकन की विशेषताएँ

भारत में न्यायिक पुनरावलोकन प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ हैं:

1. सर्वोच्च न्यायालय और राज्य उच्च न्यायालयों दोनों न्यायिक पुनरावलोकनकी शक्ति का प्रयोग करते हैं, परन्तु किसी कानून के संवैधानिक औचित्य कानिर्णय करने की अंतिम शक्ति भारत के सर्वोच्च न्यायालय के पास है।
2. सभी संघीय और राज्य कानूनों, कार्यपालिक आदेशों और संवैधानिक संशोधनों के संबंध में न्यायिक पुनरावलोकन किया जा सकता है।
3. संविधान की 9वीं सूची में दर्ज अधिनियमों के संबंध में न्यायिक पुनरावलोकन नहीं किया जा सकता।
4. न्यायिक पुनरावलोकन स्वचालित नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय कानूनों परन्यायिक पुनरावलोकन करने की कार्यवाही स्वयं अपने आप नहीं रकता। यह तब हीकार्यवाही करता है जब कानूनों को इसके सामने चुनौती दी जाती है जब किसीमुकदमे की कार्यवाही के दौरान किसी कानून के संवैधानिक औचित्य का प्रश्नइसके सामने उठाया जाता है।
5. सर्वोच्च न्यायालय चुनौती दिए कानूनों/आदेशों के पुनर्निरीक्षण केपश्चात् यह निर्णय कर सकती है: (i) कानून संवैधानिक रूप में उचित है। इसमामले में कानून पहले की तरह लागू रहता है, अथवा (ii) कानून संवैधानिक रूपमें अनुचित है। इस संबध में कानून निर्णय की तिथि से लागू होना बंद हो जाताहै, अथवा (iii) कानून के केवल कुछ भाग या एक भाग अनुचित है। इस स्थिति मेंकेवल अनुचित भाग लागू नहीं रहता और दूसरे भाग लागू रहते हैं। परन्तु यदिअनुचित पाए भाग कानून के लिए इतने महत्वपूर्ण हों कि दूसरे भाग इनके बिना नलागू हो सवेंफ, तो समस्त कानून को ही अनुचित ठहराया जाता है और रद्द करदिया जाता है।
6. न्यायालय की ओर से असंवैधानिक और अयोग्य घोषणा करने के दिन से पहले कानून के आधार पर किए गए कार्य विद्यमान रहते हैं।

7. सर्वोच्च न्यायालय अपने पहले निर्णयों में संशोधन कर सकता है या उनको रद्द कर सकता है।

8. कानून के द्वारा स्थापित प्रक्रिया बनाम कानून की उचित प्रक्रिया (Procedure Established by Law vs. Due Process of Law) : भारत में न्यायिकपुनरावलोकन जिस सिद्वान्त के आधार पर शासित किया जाता है वह है : कानून केद्वारा स्थापित प्रक्रियाय् न कि कानून की उचित प्रक्रिया जो अमेरिका मेंलागू है। 'कानून की उचित प्रक्रिया' के अधीन न्यायपालिका कानून कीसंवैधानिकता की परख करने के लिए दोहरी परीक्षा करती है। पहला, न्यायालय परखकरता है कि क्या कानून बनाने के लिए संस्था ने प्राप्त शक्तियों की सीमाओंके अंदर कार्यवाही की है और निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार कार्य किया हैअथवा नहीं। दूसरा, न्यायालय परख करता है कि क्या कानून प्राकृतिक न्याय केउद्देश्यों को पूर्ण करता है कि क्या यह एक उचित कानून है या नहीं। यदिकानून इन दोनों आधारों में से किसी एक पर भी पूरा नहीं उतरता तो इसकोअसंवैधानिक मान कर रद्द कर दिया जाता है। इससे विपरीत 'कानून के द्वारास्थापित प्रक्रिया' के सिद्वान्त के अधीन जैसे भारत के संविधान में दर्जकिया गया है न्यायालय केवल यह तय करता है कि क्या कानून बनाने वाली संस्थाने संविधान के द्वारा दी गई शक्तियों के अनुसार कानून बनाया है औरनिर्धारित प्रक्रिया का पालन किया है या नहीं। इस सिद्वान्त के अधीनन्यायिक पुनर्निरीक्षण का क्षेत्र 'कानून की उचित प्रक्रिया' सिद्वान्त केअधीन क्षेत्र से सीमित होता है। 'कानून के द्वारा स्थापित प्रक्रिया' अधीन, न्यायालय केवल कानून का पुनर्निरीक्षण यह निर्णय करने के लिए करता है किक्या इसको संविधान के द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार बनाया गया हैया नहीं, और इसके लिए इसका क्षेत्र सीमित होता है। गोपालन बनाम मद्रासराज्य मुकदमे में दोषी की ओर से यह तक्र दिया गया कि 'कानून के द्वारास्थापित प्रक्रिया' और 'कानून की उचित प्रक्रिया' में कोई अन्तर नहीं होता।परन्तु भारत के अटारनी जनरल ने यह मत दिया कि कानून के द्वारा स्थापितप्रक्रिया की गारंटी 'योग्य विधानपालिका' के द्वारा बनाए कानून के द्वारानिर्धारित प्रक्रिया की सुरक्षा या अन्य कुछ नहीं। न्यायालय अटारनी जनरल कीओर से प्रकट किए गए विचार से सहमत हो गया। इस प्रकार भारत में न्यायालय उससमय ही कानून को रद्द घोषित कर सकता है जब वह पाए कि कानून बनाने वालीविधानपालिका ने उचित प्रक्रिया का प्रयोग कानून-निर्माण के समय नहीं कियाथा। परन्तु वास्तविक व्यवहार में, भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने कानून केऔचित्य का निर्णय करने के लिए बहुत बार

कानूनों ने औचित्य की जांच व्यापकरूप में की है। इसने कभी भी संवैधानिक संशोधनों या कानूनों के द्वारा मौलिकअधिकारों पर संसद की ओर से लगाए प्रतिबन्धों के औचित्य का पुनर्निरीक्षणकरने में झिझक नहीं दिखाई। 'कानून के द्वारा स्थापित प्रक्रिया' का पालनकरते हुए और 'कानून की उचित प्रक्रिया' को रद्द करते हुए भारतीय संविधानन्यायिक सर्वोच्चता और संसदीय प्रभुसत्ता के दोनों सिद्वान्तों को रद्दकरता है जैसे यह क्रमवार अमरीका और इंग्लैण्ड में प्रचलित हैं। यह केवलमध्य मार्ग ग्रहण करता है। विधानपालिका के पास सर्वोच्चता है, परन्तुसंविधान से प्राप्त क्षेत्र के संबंध में ही और इसका प्रयोग यह कानून केद्वारा स्थापित प्रक्रिया की सीमाओं के अंदर ही करती है।

9. किसी कानून को रद्द घोषित करते हुए, सर्वोच्च न्यायलय को संविधान की उनव्यवस्थाओं/धाराओं जिनका कानून उल्लंघन करता है, के बारे स्पष्ट बतलानाहोता है। इसको उस कानून की अवैधता और असंवैधनिकता को सिद्व करना होता हैजिसको रद्द किया होता है।

न्यायिक पुनरावलोकन का आलोचनात्मक मूल्यांकन

कुछ आलोचकों ने न्यायायिक-पुनर्निरीक्षण के विरुद्व आपत्तियाँ उठाई हैं।

1. **अलोकतन्त्रीय**-आलोचक न्यायिक पुनर्न्यायिक की प्रणालीको अलोकतन्त्रीय प्रणाली मानते हैं जो न्यायालय को राष्ट्रीय जनमत और लोगोंकी प्रभुसत्तापूर्ण इच्छा का प्रतिनिधित्व करने वाली विधनपालिका की ओर सेपास किए कानूनों के भाग्य का निर्णय करने के योग्य बनाती है।
2. **स्पष्टता की कमी**–भारत का संविधान न्यायिक पुनरावलोकनकी प्रणाली की स्पष्ट व्याख्या नहीं करता। यह शक्ति अधिकतर संविधान की कईधाराओं की व्याख्या पर गर्भित शक्तियों (Implied Powers) के सिद्वान्त परनिर्भर करती है।
3. **प्रशासनिक समस्याओं का श्रोत**–यह प्रणाली समस्याओं काएक श्रोत रही है। जब किसी कानून या इसका किसी भाग/भागों को सर्वोच्चन्यायालय की ओर से असंवैधनिक घोषित करके रद्द किया जाता है तो निर्णय उसतिथि से लागू हो जाता है जिस दिन यह दिया जाता है। सर्वोच्च न्यायालयों कीओर से सुने जाते मुकदमे में जब किसी कानून की असंवैधानिकता का प्रश्न उठताहै तो ही न्यायिक पुनर्निरीक्षण किया जाता है। कानून के लागू होने के 5 या 10 या अधिक वर्षों के पश्चात् अब ऐसा मुकदमा सर्वोच्च न्यायालय के सामने आसकता है। इस प्रकार जब न्यायालय इसको रद्द करता है तो यह

प्रशासनिकसमस्याएँ पैदा करता है। कई बार न्यायिक पुनरावलोकन एक समस्या समाधान करनेसे अधिक समस्याएँ पैदा कर देता है।

4. **प्रतिक्रियावादी**–कई आलोचक न्यायिक पुनरावलोकन प्रणालीको प्रतिक्रियावादी प्रणाली समझते हैं। यह समझते हैं कि किसी कानून केसंवैधानिक औचित्य का निर्णय करते समय, सर्वोच्च न्यायालय सामान्य रूप मेंकानूनी और रूढ़िवादी दृष्टिकोण अपनाता है और सामाजिक-आर्थिक विकास कोबढ़ावा देने के लिए विधानपालिका की ओर से निर्मित प्रगतिशील कानून रद्द करदेता है। न्यायिक पुनरावलोकन, इस प्रकार विधानपालिका पर एक रूढ़िवादी रोकहै।
5. **देरी करने वाली प्रणाली**–न्यायिक पुनरावलोकन प्रणालीएक देरी और अकुशलता का एक श्रोत रही है। जब एक कानून अस्तित्व में आ जाताहै तो कई बार लोग और विशेषकर कानून लागू करने वाली एजेंसियाँ धीरे चलने कानिर्णय करती हैं या किसी कानून को लागू करने के संबंध में हाथ पर हाथ धर करबैठ जाती हैं। वह तब तक प्रतीक्षा करने को प्राथमिकता देती हैं जब तकसर्वोच्च न्यायालय अपने किसी मुकदमे में इसके संवैधानिक औचित्य का निर्णयनहीं कर लेता। न्यायिक पुनरावलोकन की प्रक्रिया अपने-आप में एक धीमी औरदेरी करने वाली प्रक्रिया है। इस प्रकार न्यायिक पुनरावलोकन देरी औरअकुशलता का प्राय: एक श्रोत बनती है।
6. **संसद को गैर-उत्तरदायी बनाती है**–आलोचक आगे तक्र देतेहैं कि न्यायिक पुनरावलोकन की प्रणाली संसद को कई बार गैर-उत्तरदायी बनातीहै क्योंकि यह किसी कानून को पास करते समय यह सोच लेती है कि सर्वोच्चन्यायालय अपने-आप इसकी संवैधानिकता/औचित्य का निर्णय कर लेगा।
7. **न्यायिक निरंकुशता**–सर्वोच्च न्यायालय की एक पीठ, संवैधनिक मुकदमा जो इसके सामने आता है, को सुनती है और साधारण बहुमत सेइसका निर्णय करती है, बहुत बार इस ढंग से एक ही न्यायधीश का तक्र ही किसीउस कानून के भागय का निर्णय देता है जो प्रभुसत्ताधारी लोगों के निर्वाचितप्रतिनिधियों के बहुमत के द्वारा पास किया गया होता है।
8. **सर्वोच्च न्यायालय की ओर से अपने ही निर्णयों को परिवर्तित करना**–यहदेखा गया है कि कई अवसरों पर सर्वोच्च न्यायालय अपने निर्णयों को स्वयं हीरद्द कर देता है अथवा परिवर्तित कर देता है। गोलकनाथ मुकदमे में दिएनिर्णय ने पहले निर्णयों को बदल दिया और केशवानंद भारती मुकदमे में निर्णयने पहले वाली स्थिति पुन: स्थापित कर दी। उसने एक कानून को पहले उचितठहराया, फिर इसे अनुचित ठहराया और फिर इसको उचित ठहराया। ऐसे परिवर्तन

उसकीएक ही जैसे मुकदमों के संबंध में अलग-अलग पीठों के द्वारा और निर्णयों मेंव्यक्तिगत सोच के तत्त्व का प्रदर्शन करते हैं।

9. **न्यायालय के सम्मान पर तनाल का एक श्रोत**–सर्वोच्चन्यायालय कई बार न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग करते हुए राजनीतिकचर्चा का केन्द्र बन जाता है। गोलकनाथ मुकदमे के निर्णय के पश्चात् नाथ पाईबिल पर हुई संसद चर्चा ने स्पष्ट रूप में इस तथ्य को उभारा था। न्यायिकपुनरावलोकन न्यायालय के सम्मान के सम्मान को कम कर सकता है और इसकोराजनीतिक चर्चा के अखाड़े में ला सकता है।

10. **न्यायपालिका और संसद के मध्य गतिरोधों की संभावना**–जबसर्वोच्च न्यायालय किसी कानून को असंवैधानिक घोषित करके रद्द करता है, तोप्राय: संसद संविधान के संशोधन से या अन्य कानून बनाने के निर्णयों केद्वारा इस पर नियंत्रण करने का प्रयास करती है। इस प्रक्रिया मेंन्यायपालिका और संसद के मध्य गतिरोध और विवाद पैदा हो जाते हैं। मौलिकअधिकारों (भाग III) और राज्य नीति के निर्देशक सिद्वान्तों (भाग IV) केमध्य संबंधों के मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय और संसद के दृष्टिकोणों औरव्यवहार में अन्तर ने दोनों के मध्य गतिरोध उत्पन्न कर दिया था। ऐसे गतिरोधऔर विवाद भविष्य में भी उत्पन्न हो सकते हैं।

इन सभी आधारों पर आलोचकों ने भारत में चल रही न्यायिक पुनरावलोकन प्रणाली की आलोचना की है।